Chap-1

अध्याय एक

कवि 'तरुण' का वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व

परिचय एवं परिवेश

वृत्ति एवं प्रवृत्ति

सतत् विकसित साहित्य व्यक्तित्व

वर्तमान मे साहित्यिक क्षेत्र के प्रख्यात् कवि, लेखक एवं समालोचक रचनाधर्मी डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' का जन्म यशस्वी राजस्थान की पावन धरा मेवाड के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नगर भीलवाड़ा मे अति साधारण स्थिति के वैश्य परिवार मे 25 दिसम्बर 1919 ई0 (आषाढ बदि 10, संवत् 1976 वि0) में हुआ। इनके पिता श्री हरिवल्लभ जी और माता श्रीमती सूरज देवी, दोनों ही बडे सरल स्वभाव के, धार्मिक एवं श्रद्धालु व्यक्ति थे। वैष्णव संस्कारो से युक्त, स्नेह एवं सौहार्दपूर्ण पारिवारिक वातावरण में पले–बढे 'तरुण' को माता–पिता की यह आस्तिक भावना, सरलता, निश्छलता, आस्था और विश्वास विरासत में मिले। आर्थिक अभावों और भौतिक सघर्षों ने उनको बचपन से ही परिश्रमी, साहसी और कर्मठ बना दिया –

"जीवन है स्वीकार न मुझको सीधी–खींची लकीर–सा,
चाहे वह झँकार भरा नूतन सितार का तार हो!
गोलाकार क्षितिज–रेखा–सा भी जीवन लूँगा नहीं–
चाहे वह वन–वल्लरियों–सा सुन्दर घूँघरदार हो!
जीवन लूँगा मैं तो आँधी, नदी या तूफ़ान–सा,
जिसमें तड़पन हो, ज्वाला हो, गुंजन, मेघ–मलार हो!" [1]

'तरुण' की आरम्भिक शिक्षा भीलवाडा के महाराणा मिडिल स्कूल सन् 1924–27 ई0 तक में हुई। धार्मिक संस्कारों से पूर्ण इन्होंने गॉव के (तब तक भीलवाडा चितौडगढ़ के निकटवर्ती एक गॉव ही था) जैन उपाश्रयों एव मकतब में भी पठन किया। 1927 में भयकर सन्निपात से ग्रस्त हो इन्होने मृत्युशय्या ही पकड ली थी। देवयोग, एक तरह से उन्हे पुनर्जन्म ही मिला लेकिन उसी वर्ष बडी बहन कु0 गुलाब की तेरह वर्ष की अल्पायु मे ही मृत्यु हो गई।

'वडी बहिन प्यारी 'गुलाव' की स्मृति में' कवि ने कविता नहीं लिखी, एक चित्र उपस्थित कर दिया है कि मै अपने आसूॅ न पी सका– छलक गये एक घुटन देकर। यदि रुदन से ही भार हल्का होता तो मानव खूब रो सकता था, पर नहीं, रुदन तो और सुधि दिलाता है और चित्र से नाचने लगती है बाल्यकाल की गतिविधियॉ–

"तुम आ मुझे जगाती कह कर
फैला बाहें स्नेहमयी–
'भैया जागो, देखो कितनी
धूप सुनहली निकल गई।" [2]

'तरुण' की चौथी कक्षा से दसवी कक्षा तक की नियमित प्रारम्भिक शिक्षा नन्दलाल भण्डारी हाई स्कूल, इन्दौर में हुई। यही पर गेद के खेल की टीम से अलग बैठा दिये जाने पर ग्यारह वर्षीय बालक ने निराशा में अपनी प्रथम कविता लिखी –

"राजा जी की रानी चली, पीपली के नीचे,
वहाँ जाकर रानी क्या करे कि पीपल में जल सींचे।
दिन था वह गणगौर का चली चहेली साथ।
हँसती गाती जा रही, जल की मटकी हाथ।" [3]

छात्र–जीवन मे ही इन्होने विद्याध्ययन, स्काउटिंग, चित्रकला, मंचाभिनय, काव्य–पाठ आदि क्षेत्रो में अनेक प्रशंसा–पत्र

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अस्वीकार', पृष्ठ 36
2 वही, 'बडी बहिन प्यारी 'गुलाब' की स्मृति में', पृष्ठ 302
3 वही, 'पीपल मे जल', पृष्ठ 331

एव पुरस्कार प्राप्त किए। स्कूल के अनेक अध्यापकों के स्नेह एव प्रशंसा से उत्साहित होकर इन्हे काव्य के क्षेत्र में आगे बढने की प्रेरणा मिली। छठी कक्षा मे मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर मे कविता–पाठ पर 'डॉ0 सरयु प्रसाद रजत पदक' प्राप्त किया और खण्डवा में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के हाथो तुलसी–जयन्ती कवि सम्मेलन में पदक प्राप्त हुआ और साथ ही इन्हें 'बाल–कवि' की सज्ञा से सम्बोधित किया गया। इस प्रकार अनेक काव्य–आयोजनो में कई पदक–पुरस्कार मिलें। खण्डवा में 'तुलसी–जयन्ती' पर 'तुलसी' पर जो कविता सुनाई वह इस दृष्टव्य है–

"नमस्कार हे तुलसीदास।
इस उजड़े उपवन में प्रियतम, सदा महकती रहे सुवास,
रामायण के स्वच्छ पृष्ठ में, नम करता है आज निवास
काले अक्षर बन–बन तारे दिखलाते अपना मधु हास,
मिलता एक एक अक्षर में द्राक्षासव का मेरा गिलास,
नमस्कार है तुलसीदास।" [1]

बचपन मे सन्निपात के अतिरिक्त अनेक अवसरों पर घटी दुर्घटनाओं के कारण कई बार 'तरुण' के प्राण बाल–बाल बचे। संभवत: मौत से साक्षात्कार की इस गहन अनुभूति के कारण उनकी कविताओं में मृत्युबोध की सूक्ष्म व्यजना हुई है। मौत का बार–बार सामना करके कवि मृत्युजय के रूप में उभरकर सामने आया है–

"मैं– और मानूँ हार?
जन्म से जो ऊधमी हो–
मौत के जबड़े पकड़कर
खींच उसके दाँत सारे,
जिन्दगी का अर्क पीने को खड़ा तैयार।" [2]

कही–कहीं यह बोध अत्यन्त कलात्मक और सहज रूप में व्यक्त हुआ है। तो कहीं अग्नि की शिरोरेखा और चिंगारियों के अक्षरों में लिखा गया है–

"नस–नस में ले पौरुष अपार मैं जिऊँ विश्व में रह अजेय,
झंझा–सा दुर्दमनीय बना, खोजूँ जीवन का परम श्रेय!
बन पवन–पुत्र–सा, वज्र–अंग, हो विज्जु–वेग से प्राणवान्,
मैं नष्ट–भ्रष्ट कर दूँ जग का सारा तम–बन कर अग्नि–वाण!
मैं मृत्युंजय बन मृत जग को जागृत कर दूँ, कर शंख–नाद,
नित गर्वोन्नत–सा लहराऊँ अपनी ही महिमा में अगाध!" [3]

दुर्भाग्यवश 8 मई 1935 ई0 मे उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और इसके कुछ ही महीने बाद जहरबाद की भयकर पीडा से दिनांक 27 अगस्त 1935 ई0 मे माता जी का भी निधन हो गया। और इस प्रकार आर्थिक अभावो से जुझते हुए किशोर 'तरुण के जीवन से मातृ–पितृ–प्रेम का अमूल्य धन भी छिन गया। कवि के इस संघर्षमय करुण जीवन की गाथा उनके काव्य में स्थान–स्थान पर प्रतिबिम्बित है–

---

1 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'मेरी ऑखो की खिडकी से', पृष्ठ 28
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अपराजेय', पृष्ठ 162
3 वही, शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', पृष्ठ 204–205

"जब आँख विहगों की खुली–पाया प्रभात प्रकाशमय,
जब आँख कलियों की खुली–सम्मुख मिले अलि प्रेममय,
जब आँख तारों की खुली – घर–घर मधुर दीपक जले,
मेरे नयन जब से खुले – मैंने सदा देखा प्रलय।" [1]

सन् 1937 ई0 में इन्दौर से मैट्रिक की परीक्षा उतीर्ण करने के पश्चात् इन्होने बिडला कालेज, पिलानी, राजस्थान में इन्टर कामर्स मे प्रवेश लिया। इस दौरान इन्हे साहित्यिक लेखन व काव्य–पाठ पर अनेक प्रथम एवं विशेष पुरस्कार प्राप्त हुए, साथ ही गुरु गोविन्द सिह जयन्ती पर स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया। भयकर अर्थाभावो के बीच भी विद्या–अध्ययन के साथ–साथ साहित्य सृजन का क्रम जारी रहा।

सन् 1939 ई0 मे इन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में बी0 ए0 अंग्रेजी साहित्य, हिन्दी साहित्य व राजनीति शास्त्र मे प्रवेश लिया। यहॉ पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, पं0 जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा पण्डित पद्मनारायण आचार्य जैसे युग निर्माता शिक्षको के सानिध्य में 'तरुण' ने बी0 ए0 द्वितीय श्रेणी मे और एम0 ए0 (हिन्दी भाषा और साहित्य) प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर उतीर्ण किया। यही पर सुप्रसिद्ध विद्वान गुरु प0 केशवप्रसाद मिश्र के निर्देशन मे अपना प्रथम लघु शोध–प्रबन्ध 'कविता में प्रकृति–चित्रण' लिखा। यहॉ गगा के हरे–भरे प्रदेश मे प्रकृति के रम्य परिवेश में 'तरुण' के भीतर का कवि और अधिक मुखर हो उठा और नित नई कविताओं की सृष्टि होने लगी। अब काव्यवस्तु अपेक्षाकृत प्रौढ और शिल्प परिष्कृत हो चला था।

सन् 1942 ई0 मे 'तरुण' ने दक्षिण–भारत की यात्रा सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र कुमार के साथ की और इसी दौरान मद्रास में समुद्र का सर्वप्रथम दर्शन किया। समुद्र की विशालता के विहंगम दृश्य का वर्णन उन्होंने अपने संस्मरण में किया है–

"मुझे रोमांच हुआ–शक्ति के उस रमणीय और उदात्त रूप के सामने। तन जैसे सिहर उठा। कितना विस्तार! कितनी विशालता! कितनी गति कितनी गहराई! कितना रोर! कितनी गाढ़ नीलिमा! जान पड़ता– जैसे लहरें मुझे लेने आ रही हों! मैं फिर सिहर उठा! मैं संभल न सका। अनुभूति के उन गहन क्षणों में जैसे मैं उस विराट सत्ता में मिलने लपका! मिल गया! एक हो गया! चेतना के समुद्र में चेतना का बिन्दु घुल गया! अनजान में जैसे मुँह से फूट पड़ा– शक्तिनाथ! ब्रह्म की शक्ति से मुखरित हो रहा था।" [1]

साथ ही 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न' कविता भी प्रस्फुटित हुई जिसमे वे इस शक्ति–स्वरूप समुद्र से बल, स्फूर्ति, शौर्य व प्रबल वेग की मांग करते हैं–

"भर दो तन में बल, स्फूर्ति, शौर्य, प्राणों में विद्युत प्रखर–
दे अपना महिमामय विचरण, मुझको निज–सा कर दो सागर!
मैं हो स्वतन्त्र विचरूँ भू पर, निर्भीक, मरण का तजकर भय,
ले शक्ति–तरंगों से स्पन्दित–सुदृढ़, बलिष्ठतम, वज्र हृदय!" [2]

भावों के सशक्त बिम्ब उपस्थित करने में लेखक को कमाल हासिल है। समुद्र के प्रथम दर्शन के साथ ही इन्होंने अपना कुछ समय पण्डिचेरी के योगिराज अरविन्द के आश्रम मे गुजारे और श्री मॉ के दर्शन भी किए। सन् 1943 ई0 मे ग्वालियर के जे0 सी0 मिल्स मे स्टोर विभाग मे नौकरी की, लेकिन तीन दिन बाद ही नौकरी छोड दी। तत्पश्चात् 1943 ई0 मे ही काशी मे रिसर्च का

---
1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'मेरी प्राप्ति', पृष्ठ 142
2 वही, 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', पृष्ठ 204

प्रयास किया जो असफल रहा। फिर उदयपुर के महाराणा भगवतसिंह जी के पिता श्री प्रतापसिंह जी के यहाँ 14 दिन तक प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर काम किया। पर, मुक्त जीवन की खोज में बिना वेतन लिए चले गये।

सन् 1944–45 ई0 मे रेवाडी के राव बलवीर सिंह अहीर हाई स्कूल मे अग्रेजी तथा भूगोल के शिक्षक के रूप में पढाया। 1945–46 में बीकानेर के मोहता मूलचन्द हाई स्कूल में हिन्दी शिक्षक के रूप में रहे। 1946–47 में उदयपुर के विद्याभवन में हिन्दी–शिक्षक थे। 1947–48 मे अमरोहा, उत्तरप्रदेश के साहू जगदीश सरन हिन्दू इंटर कालेज में हिन्दी–लेक्चरर पद पर नियुक्त रहे।

इस तरह सन् 1944 से 1948 ई0 तक 'तरुण' ने चार अलग–अलग शिक्षण संस्थानों मे अध्यापन कार्य किया सन् 1948 ई0 में इनकी नियुक्ति मेरठ कालेज, मेरठ में हिन्दी प्राध्यापक के पद पर हुई। यहाँ वे 1958 तक सेवा–निरत रहे। यहीं पर उनकी प्रथम काव्यकृति 'प्रथम–किरण' 1949 में प्रकाशित हुई इस सग्रह के सम्बन्ध में कवि 'तरुण' ने अपने 'निवेदन' में इस प्रकार लिखा है–

"यह मेरे बाल प्रयत्न हैं। सिन्धु–तट पर बैठकर अपनी कल्पना के अनुकूल मैंने ये रेत के घरौंदे बनाए हैं– जानते हुए भी कि गरजती हुई लहरों के पेट मे ये समा जाएँगे। पर निर्माण में ही मनुष्य अमर है। ... 'प्रथम–किरण' में जगत के अन्धकार से संघर्ष कर प्रकाश पाने का प्रयत्न है। यदि पाठकों के हृदयों में इस किरण का कुछ मधुर आलोक फैल सका तो मुझे सन्तोष होगा।" [2]

'प्रथम किरण' की भूमिका प0 माखन लाल चतुर्वेदी ने लिखी है। 'आशीर्वाद' के रूप मे पण्डित जी के हृदय–उद्‌गार भावविभोर करते है–

"चि0 रामेश्वर की रचनाऐं मैंने पढ़ीं। उनका संग्रह प्रेस में छप रहा है। ये पंक्तियाँ मेरा पक्षपात हैं क्योंकि चि0 रामेश्वर को बचपन में धूलिकणों से उठकर, बढ़ते मैंने देखा हैं, और अँगुली पकड़ कर चलाया है। उनके काव्य में मुझे सरलता, सुषमा और आस्तिकता के मधुकण दिखाई देते हैं।...

इस देश की जलवायु, उसका इतिहास, उसकी पूजा और उसकी वन्दना से रामेश्वर का हृदय भरा हुआ हैं। मुझे विश्वास है कि वे अपनी प्रथम रचना में अन्तिम सुख का अनुभव न करके इसे आराध्य के मन्दिर पर चढ़ने की प्रथम सीढ़ी मानेंगे और उस घर तक पहुँचने का प्रयत्न करेगें जिस घर के द्वार अनुराग के भरे हृदय से भी परम विराग' में खुलते हैं और सूझों के अपरिमित अभ्यास के बाद ही करुणा के स्वर्णकणों के दर्शन हो पाते हैं। मैं इच्छा करता हूँ कि रामेश्वर अपनी सूझ, अपनी कृति और अपने जीवन में सफल होगें।" [3]

'प्रथम किरण' 'तरुण' की बाल–सुलभ रचनाऐं है। इस सग्रह मे कवि ने प्रकृति को बहुत करीब से बडी तन्मयता से निहारा है, उसके सौन्दर्य का पान किया है ये रचनाएँ हमारे मन को आहलादित कर देती हैं। साथ ही ग्राम्य जीवन का वास्तविक व कटु यथार्थ पूर्ण वर्णन किया है।

उनकी दूसरी काव्यकृति 'धूपदीप' 1951 में प्रकाशित हुई। यह काव्यकृति एक भक्त द्वारा ईश्वर के प्रति प्रेम, आस्तिकता व लगाव की रचना है। स्वयं को एक दासी मानकर कवि अपने प्रभु के चरणों मे चढाने के लिए अपना हृदय लाये हैं–

मैं तो दासी जन्म–जन्म की, समझो नहीं पराई, नाथ!
फूल अभी कुम्हला जायेंगे, राख अभी होगी बाती,
पूजा के मिस मैं तो केवल हृदय चढ़ाने आयी, नाथ!" [1]

'हिमाचला' का प्रकाशन 1952 में हुआ। 'हिमांचला' को उन्होंने अपने प्राणो पर अधिकार रखने वाली प्रिये को समर्पित

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'आज तुम्हारी पूजा करने', पृष्ठ 230

किया है। 'हिमांचला' में कवि का प्रगतिशील दृष्टिकोण व्यंजित हुआ है। जीवन की आपाधापी और विज्ञान की मशीनी नीरसता के बीच भी उनकी कविता आस्था और आलोकपूर्ण जीवन के आत्मिक स्वरों का उद्‌घाटन करती है। तरुण ने 'हिमांचला' के सम्बन्ध में अपने 'आभास' मे इस प्रकार लिखा है–

"'हिमांचला' का रचनाकाल मेरे जीवन की बहुमुखी और मार्मिक अनुभूतियों का काल है, इसलिए इसमें मेरी प्रकाश–चेतना, आत्मोल्लास, प्राणोष्मा, सौन्दर्य–स्वप्न, पुलक–कंप, रोमांच–स्तम्भ और अश्रु–उच्छ्‌वास आदि सभी का जीवन–सुलभ सतरंगी वैभव विद्यमान है। मेरे हृदय की समस्त सत्ता की अभिव्यक्ति होने के कारण 'हिमांचला' की रचना से मुझे बहुत संतोष है। विधाता की सृष्टि में जो कुछ त्रुटियाँ व अभाव हैं, उन्हें मैंने 'हिमांचला' में पूरा कर लेने का प्रयत्न किया हैं।

विज्ञान के इस युग में जहाँ चारों ओर कविता के प्रति आज आस्था कम होती जा रही है, वहाँ मुझे लगता है कि दरिद्र और बुद्धि–पंगु मानव के हृदय को स्वच्छ, स्निग्ध, प्रसन्न, स्वच्छ और आलोकपूर्ण रखने के लिए कविता को ही आज मानव–जीवन की स्वर्गीय सन्देश–वाहिका बनना है। विज्ञान–राजनीति–जर्जर इस विश्व को कविता ही चन्द्रिकालोकित वंशी–स्वर–लहरी–पुलकित हरी–भरी शैल–तटी में परिणत कर सकेगी; विश्वास का यह गहन आत्मिक स्वर अनमोल कोकिल बोल की तरह अखण्ड निष्ठा बन कर आज मेरे अन्तरतम से फूट रहा है।" [1]

'हिमांचला' की रचनाओ में सौन्दर्य, प्रेम, अनुराग व उल्लास के साथ अवसादमय जगत के अश्रु–उच्छवास भी हैं। विज्ञान, राजनीति के शुष्क तर्क–जाल मे बिंधे तृषित हृदयों को शीतलता प्रदान करने वाली सरस सुधा भी है। जीवन–संघर्ष से निराश टूटे मानव के लिए चेतनामय प्राण फूँकने वाला सदेश भी है। साथ ही आज के पीडित और उपेक्षित भारतीय गावो के चित्र भी है। कवि ने अनुरागमय सूक्ष्म प्रकृति का विश्लेषण और वर्णन किया है। 'हिमाचला' की प्रथम कविता की केवल चार पक्तियॉ ही कितनी सुन्दर और स्वाभाविक है–

"उधर, अस्त हो गया दिवाकर,
इधर, प्रकट हो रहा चन्द्रमा;
ज्यों, जग–शिशु को पिला एक स्तन–
खोल रही दूसरा, प्रकृति–माँ!" [2]

इस अभिव्यक्ति मे जग–शिशु के प्रति प्रकृति–मॉ का प्यार बरस रहा है–

"धवल चाँदनी का कोमलतम–
अपना आँचल डाल रुपहला–
सुला रही चिर–पीड़ित जग को,
स्नेहमयी रजनी हिमांचला!" [3]

काव्य–सृजन के साथ–साथ वे साहित्यिक शोध मे भी रत रहें। सन् 1954 ई0 मे उनका एम0 ए0 के लघु शोध–प्रबन्ध रूप 'कविता मे प्रकृति–चित्रण' (1942–43 मे लिखित) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई जो बहुपठित व बहुचर्चित रही। सन् 1955 ई0 मे इन्हे आगरा विश्वविद्यालय से 'आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य' विषय पर पी0 एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त हुई।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली 'हिमाचला', पृष्ठ 169
2 वही, 'हिमाचला', पृष्ठ 169

उनका यह शोध प्रबन्ध 1959 मे नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'प्रेम' और 'सौन्दर्य' डा0 'तरुण' के काव्य के मूल प्रेरक तत्त्व है जिन पर 'तरुण' की सम्पूर्ण काव्य–सृष्टि का स्नायुजाल आधारित हैं। इन्ही मूलभूत सूक्ष्म शाश्वत जीवन–तत्त्वो से प्रेरित होकर 'तरुण' की कवि–चेतना जीवन और जगत् तथा उनके विभिन्न सरोकारों के समग्र परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त हुई है, जिसके कारण उनके काव्य में जीवन, समाज एवं प्रकृति आदि के विभिन्न आयाम दृष्टिगोचर होते है।

प्रेम और सौन्दर्य के विषय में डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' के विचार विशेष महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय है– ***"संसार के सब देशों और सब कालों के साहित्य का मन्थन करके यदि उनमें से कोई शाश्वत तत्त्व निकाला जाये तो वह तत्त्व होगा– प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएँ। साहित्य में यही विषय सनातन होते हुए भी चिर–नवीन है। आदि कवि से लेकर आधुनिक कवि तक के काव्य में यह स्थायी तत्त्व है। वास्तव में प्रेम और सौन्दर्य का विषय छोटा नहीं है। इनमें मानव–हृदय की समस्त वृत्तियाँ और जगत् के सारे रूप समाविष्ट हो जाते हैं।"*** [5]

मेरठ कालेज मे रहते हुए श्री 'तरुण' काव्य–सृजन, शोध, अध्ययन, अध्यापन, साहित्य–लेखन के अतिरिक्त शोध–गोष्ठियों, कवि गोष्ठियों, यात्राओं एवं अन्यानेक साहित्यिक आयोजनो में भी उत्साहपूर्वक व्यस्त रहे।

1958 में 'तरुण' ने 'महाकवि प्रसाद' नामक ग्रन्थ डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक की सहयोगिता में लिखा। समीक्षात्मक साहित्य के क्षेत्र की उनकी इस दूसरी पुस्तक (प्रथम पुस्तक 'कविता में प्रकृति–चित्रण'.थी) का प्रकाशन वर्ष 1969 था। अनुभवी तथा विद्वान लेखकद्वय द्वारा अत्यन्त निष्ठा एव श्रमपूर्वक लिखित 'प्रसाद' काव्य के सौन्दर्य को अनावृत करने वाली यह पुस्तक समीक्षक–वर्ग में खूब चर्चित और प्रशंसित हुई वस्तुतः इस पुस्तक मे 'प्रसाद' के काव्य के मर्म को पहली बार इतनी सूक्ष्मता और समग्रता के साथ परखा गया था।

सन् 1958 मे इनकी नियुक्ति सरदार पटेल विश्व–विद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात में रीडर के पद पर हुई, जहॉ वे 1958 से 1965 तक रीडर–पद पर रहे। तदन्तर वहॉ ये 1965 तक हिन्दी विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष पद पर रहे और फिर यहीं दो वर्ष तक कला–संकाय के 'डीन' भी रहे।

4 जून सन् 1959 में इनका विवाह सौ0 का0 कान्तिबाला के साथ ग्वालियर मे हुआ। बाल–शिक्षण में निष्णात, सौम्य एवं मृदु स्वभावी श्रीमती कान्तिबाला हृदय के सुमधुर गुणों की धनी है और सुरुचिपूर्ण कुशल गृहिणी हैं। 3 नवम्बर 1961 को इनके प्रथम व एकमात्र सन्तति पुत्र अमित (अमिताभ) का जन्म हुआ।

सन् 1964 मे श्री 'तरुण' को 'जयशकर प्रसाद' वस्तु और कला' पर आगरा विश्व–विद्यालय से डी0 लिट0 की उपाधि प्राप्त हुई। यह शोध–प्रबन्ध 1968 में नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सन् 1969 में इन्हें उत्तरप्रदेश प्रशासन द्वारा 'तुलसी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

सरदार पटेल विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में श्री 'तरुण' ने अत्यन्त उच्चस्तरीय शोध एव समीक्षात्मक ग्रन्थो का सम्पादन भी किया और शोध–गोष्ठियों एवं साहित्यिक–शैक्षणिक यात्राओ के आयोजन मे भी वे व्यस्त रहे। उन्होने देश के अनेक विश्वविद्यालयो और कालेजो मे दर्शन साहित्य, मनोविज्ञान, समाज–शास्त्र, विज्ञान, इतिहास, भाषा शास्त्र तथा यान्त्रिकी आदि विभागों मे भी अग्रेजी व हिन्दी मे भाषण दिये। श्री 'तरुण' का हिन्दी, अग्रेजी, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी व गुजराती में प्राय समान अनुराग रहा तथा इन भाषाओ मे धारा–प्रवाह लिख व बोल सकने की भी योग्यता थी।

सन् 1970 मे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर श्री 'तरुण' की आमन्त्रित नियुक्ति हुई। यहीं पर वे बाद मे कला तथा भाषा संकाय के 'डीन' भी रहे तथा विश्वविद्यालय के प्राक्टर भी रहे। सन् 1971 मे मार्च–अप्रैल के मध्य दो सप्ताह की थाइलैंड व जापान की साहित्यिक–सांस्कृतिक सम्पर्क–यात्रा की, साथ ही वहाँ पर अनेक बौद्ध मन्दिरों व आश्रमों मे अपना कुछ समय व्यतीत किया। 'गुजराती सन्तो की हिन्दी वाणी' का सम्पादन भी किया।

सन् 1972 मे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी–विभाग की अर्धवार्षिक 'संभावना' नामक शोध और समीक्षा की अन्तर्राष्ट्रीय–दृष्टियुक्त पत्रिका के प्रधान सम्पादक का कार्यभार संभाला। भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज–कल्याण मन्त्रालय की योजना के अन्तर्गत 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' की ओर से 'हिन्दी के माध्यम से देश की एकता' विषय से सम्बन्धित भाषण माला के लिए प० बगाल और असम के विश्वविद्यालयो तथा शैक्षिक सस्थानो की द्वि–सप्ताह यात्रा 'तरुण' ने इसी वर्ष की।

सन् 1975 मे 'ऑधी और चॉदनी' का प्रकाशन श्री 'तरुण' की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियॉ रही। कवि 'तरुण' का यह तृतीय चरण आधुनिक भावबोध को एक नया मोड देता है। कवि की सवेदनशीलता, बौद्धिकता से सन्तुलित और संयमित है तथा भोगे हुए यथार्थ की प्रमाणिक अनुभूति पेश करती हे। कवि परिवेश के प्रति सतर्क सजग है और आत्मकेन्द्रित स्थिति से बचकर गम्भीरता के साथ जीवन के विभिन्न पक्षो को सूक्ष्मता से पकड़ता है। उसका आक्रोश पूँजीवादी समाज को ध्वंस करना चाहता है तथा विद्रोह के साथ शोषक–व्यवस्था को नग्न भी।

'ऑधी और चॉदनी' के सम्बन्ध में 'तरुण' ने 'अपनी बात' इस प्रकार रखी है– ***"हाँ, 'आँधी और चाँदनी' शीर्षक से ही विदित हो जाएगा कि इस रचना में मेरे अस्तित्व का समस्त कटुतम और मधुरतम, और इन दोनों सीमान्तों के बीच पड़ने वाला सारा आत्मद्रव, समाविष्ट है। इस दृष्टि से यह रचना सम्भवतः मेरी काव्य चेतना के प्रायः सभी प्रवाहों, उर्मियों, स्पन्दनों, अन्तरालों व आयामों का अद्यतन प्रतिनिधित्व करती हुई जान पड़ सके।***

'आँधी और चाँदनी' शीर्षक का निर्धारण अपने सुदूर अतीत जीवन में मेरे जिए और भोगे हुए एक ऐसे गम्भीर व संवेदनमय प्राकृतिक दृश्य व स्थिति से प्रेरित है जो मेरे व्यक्ति–जीवन व युग–जीवन की अन्तरंग व संश्लिष्ट मर्म–वेदना का सफल–सार्थक ढंग से वाहक व व्यंजक है।" [6]

सन् 1977 में यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गुजरात राज्य द्वारा 'आधुनिक कविता' नामक ग्रन्थ का गुजराती भाषा में 'तरुण' ने संकलन व सम्पादन किया। 25 दिसम्बर 1979 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी–विभागाध्यक्ष पद से सेवा–निवृत्त हो गये। 31 मार्च 1980 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 'आचार्य, हिन्दी–विभाग' पद से विश्वविद्यालय की सेवाओं से निवृत्त होकर 'तरुण' साहित्य सेवा के प्रति पूर्णत. समर्पित भाव से अधिक उत्साह व लगन से सृजन व लेखन मे प्रवृत हुए।

देश के तीन प्रमुख विश्वविद्यालयो में अपने कार्यकाल के दौरान श्री 'तरुण' ने अनेक शोध–छात्रो का शोध–निर्देशन किया। अनेक उच्चस्तरीय और वैविध्यपूर्ण विषयों के निर्देशन मे उन्होने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। हिन्दी की आधुनिक कविता और 'प्रसाद' साहित्य के तो वे मर्मज्ञ विद्वान है। इन विषयो के अतिरिक्त उनके द्वारा निर्देशित शोध–विषयों में शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक विषय, उपन्यास व समीक्षा आदि विधाएँ सम्मिलित है। 20 शोधार्थियो ने उनके विस्तृत ज्ञान और प्रौढ़ वैदुष्य से लाभान्वित होकर औपचारिक रूप मे अपना शोधकार्य सम्पन्न किया। यों वे अगणित शोधार्थियों को अपने ज्ञान से लाभान्वित करते रहे।

'तरुण' द्वारा सम्पादित संकलन 'अग्नि संगीत' का प्रकाशन समय 1981 ई0 था। तत्पश्चात् उनकी ढेरों साहित्य–समीक्षात्मक लेखन सामग्री मे से सत्रह उच्चकोटि के समीक्षात्मक निबन्धों का सग्रह 'समीक्षा के वातायन' (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, करनाल) सन् 1983 में प्रकाशित हुआ। इन निबन्धो मे से अधिकाश मे श्री 'तरुण' के मौलिक समीक्षात्मक सिद्धान्तों का प्रतिवादन है और शेष में कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियों एवं कृतिकारो का मूल्यांकन है। सभी लेख बड़े पाण्डित्यपूर्ण व सारगर्भित है और लेखक द्वारा सम्बद्ध साहित्य के विशद एव गम्भीर अध्ययन के बहुमूल्य प्रतिफल हैं।

25 अगस्त सन् 1983 को श्री 'तरुण' के एकमात्र पुत्र 21 $^{3}/_{4}$ वर्षीय अमिताभ की ब्रेनहेमरेज से दुःखद मृत्यु हो गई। लेकिन अथाह जीवट से भरपूर 'तरुण' इस भयकर गरल को भी पचा गये। जीवन–पथ पर अनेक उतार–चढावों को धैर्यपूर्वक पार करते हुए, विपदा से घिरने पर द्विगुणित उत्साह से आगे बढते हुए कर्मयोगी 'तरुण' अपने निजी एकान्त सर्जनात्मक क्षणों में मुस्कुराते से उठते–

"मैने अपने जीवन मे तीन प्रलय पचाये है।"

शायद सकेत रहता है– चिर अभावमय बचपन और माँ की असहाय करुण मृत्यु, यौवन मे पारिवारिक अन्याय–अत्याचार की दीर्घ गाथा और जीवन–संध्या मे प्रतिभापुज, कल्पनाशील तेजस्वी, युवा पुत्र का प्रस्थान। लेकिन इन प्रलयंकारी झझावातों से गुजरकर 'तरुण' और अधिक सक्षम होकर निकले। जीवन का विष उन्हे कही भी पराभूत नहीं कर सका। एकाकी युवा पुत्र के मरण की हृदयविदारक घटना के बाद भी इस अद्‌भुत जीवट के कवि ने सन् 1984 में हिहिनाते हुए एक कविता लिखी थी– 'एक चढाई अभी और।'–

"पार तो कर ही आया तू दर्रे, पठार
खोह, खड्ड, खाइयाँ–तराइयाँ, टीबे, टीले–
धरती के गहरे फाड़ – खाऊँ दरार।
– लेकर, काँटों से छिले अंगों पर झिले
घाव, फफोले, छाले, रक्त की धार!
मूरख! इन्हें तू क्या देखता है बार –बार!
बस आ ही तो रहा है अब –
तेरे सफर का आखिरी दौर।
बस, एक चढ़ाई अभी और!" [1]

अपने उपनाम को सार्थक सिद्ध करते हुए उन्होने जीवन की विषम परिस्थितियों मे भी अडिग मनोबल, सुदृढ व्यक्तित्व और कर्मठ स्वभाव का परिचय दिया है। जीवन के झझावातों का डटकर सामना किया है। मौत के जबडे पकडकर जीवन–रसपान करने को तैयार खडा लौह–पुरुष भला किसी भी विषम परिस्थिति मे घुटने कैसे टेक सकता है?–

"मैं प्रलय की आँधियों में से निकलता चांद–
मेरा हास तो देखो!
कर न पायेगा कभी भी राहु मेरा ग्रास–
यह विश्वास तो देखो!" [2]

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'एक चढाई अभी और', पृष्ठ 414
2 वही, 'मुक्तक', पृष्ठ 329

'तरुण' ने हर परिस्थिति को जीवन में जीवट के साथ जीया है। उन्हे जड मृत्तिका होकर दीर्घ जीवन जीने की कामना नहीं। उनके लिए मधुरतम तृप्ति का पल–भर का जीवन ही श्रेष्ठ है–

"मेरे अस्तित्व के मौन–मन्द जलते
माटी–दीप की बाती के सिरे पर–
अरुण–नील–हरित–सा,
राई के दाने–सा, नन्हा–सा,
सुकुमार–सा,
ज्योति–जीवी–सा, स्नेहपायी–सा,
अँधेरे, मौत और धुएँ में–
अनबुझ–सा,
मुझे आलोक, अभय और त्राण देता लगता–सा,
मुझे साँस–साँस साधता–सा,
है,
है, कुछ ऐसा है!" [1]

जीवन–चेतना से सतत् प्रदीप्त यह प्राणवान् कलाकार मृतप्राय. मानव जाति में चेतना का संचार करने वाले शक्ति–काव्य की रचना इसलिए कर पाया कि इस प्राणदायिनी संजीवनी का अक्षत स्रोत उसके हृदय में ही कहीं विद्यमान था।

जीवन के घात–प्रतिघातों को झेलते हुए संवेदनाओं से भरपूर 'तरुण' जिस काव्य की रचना करते आ रहे थे– उसके मूल्याकन व विश्लेषण के क्रम मे रसज्ञ कवियों व प्रबुद्ध समीक्षको ने मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, शैली, कीटस, वाल्ट ह्विटमैन, कॉलरिज, इलियट, कालिदास, जयदेव, तुलसी, सूर, प्रसाद, पन्त, निराला, अज्ञेय और देश–विदेश के अगणित कवियों, समीक्षकों, दार्शनिकों व विचारकों के तुलनात्मक उल्लेख किए हैं।

प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य, मानव–जीवन, समाज, युग और वैश्विक चेतना 'तरुण' के काव्य के प्रिय विषय रहे। प्रकृति उनका सर्वप्रिय क्षेत्र रहा। मरु, पर्वत, मैदान, नदी, समुद्र– उनके प्रकृति निरूपण के व्यापक कैनवास रहें। मानव–हृदय की सभी भावनाओं के चित्रण में उनकी गहरी प्रीति रही। डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने ठीक ही लिखा है–

"विगत पांच दशकों से अपने विकास के समस्त सोपानों पर अपनी प्रौढ़ एवं प्रांजल लेखनी से इन्होंने मानव, समाज व प्रकृति का विराट चित्रपटी पर अन्धकार, प्रकाश, मानवीय सुख–दुख व अश्रु–उच्छवास के सुदूरवर्ती ध्रुवों को घेरते हुए अपनी भावना–संवेदना, विचार और कल्पना के अगणित रमणीय चित्र अपनी कृतियों में उतारे हैं। इनका बहुआयामी गम्भीर काव्य मानव–जीवन की गरिमा, उसका सौन्दर्य, उसकी ऊर्जाओं– प्रेरणाओं तथा जीवन को महिमामण्डित करने वाले मूल्यों से समृद्ध व अनुप्राणित है।" [7]

सितम्वर 1983 मे उन्होंने कुरुक्षेत्र से सोनीपत स्थानान्तरण कर लिया। यहीं पर 1984 मे उनकी नवीन भावबोध की रचनाओ की काव्य कृति 'हम शिल्पी सत्रास के' प्रकाशित हुई। इस सग्रह मे कवि का स्वर एकदम बदला हुआ है। इन कविताओं में कवि अनेक समकालीन विषयों, सन्दर्भों, संवेदनाओं, प्रश्नो और मूल्यो से टकराता हुआ लक्षित होता है। युग का संत्रास उसके परिपाटीबद्ध मोह

1 'आंधी और चॉदनी' 'है!', पृष्ठ 30

को झाडकर निखालिस रूप मे उसके सामने खडा है। भाषा मे खुरदरापन आ गया है और शिल्प में वैविध्य लक्षित होता है। आम जीवन के अनेक दृश्य, प्रसग, अनुभव, सोच–समझ आपस में अनुस्युत होकर एक संश्लिष्ट सत्य बिम्ब की रचना कर रहे है और भाषा उनकी सहचरी होकर ठोस जीवन्त शब्दो की शक्ति से मूर्त हो उठी है।

1987 मे समीक्षात्मक साहित्य के अतिरिक्त 'तरुण' की विपुल मात्रा मे रचित वैविध्यपूर्ण लेखन राशि मे से विविध शैलियो से युक्त नानारूपा वैचारिक एवं ललित गद्य की रगारग बाईस रचनाओ का सग्रह 'सूरज डूबते की वदलियॉ' अमित कान्ति प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह संकलन एक प्रतिष्ठित कवि और प्रबुद्ध समीक्षक 'तरुण' के ललित गद्यकार और अद्‌भुत शैलीकार का एक नया रूप पाठको के सामने लेकर आया।

डॉ0 रवीन्द्र कुमार जैन के अनुसार, ***"इस कृति का प्रत्येक अंश भावों की मधुरता और स्पष्टता तथा भाषा–शैली की प्रवाह–प्रांजलता के कारण हिन्दी–साहित्य की विशिष्ट निधि बन गया।"*** [8]

वस्तुत. इस कृति की प्रत्येक रचना में– रचनाकार की अन्तरगता और आत्मीयता ने सहृदय पाठक वर्ग को सम्मोहित–सा कर लिया। इनकी रचनाओं मे निहित लोक–तत्त्व से प्रभावित होकर सहृदय और विद्वान समीक्षक डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी ने डॉ0 'तरुण' को हिन्दी के प्रख्यात निबन्धकारों के समकक्ष रखते हुए लिखा–

"लोकजीवन के साथ–साथ इन रचनाओं में प्रकृति–श्री भी अपनी समस्त सौन्दर्ययुक्त छवियों के साथ उतरी है। प्रकृति के उल्लसित चित्रों के बीच लेखक की समृद्ध चेतना कहीं महादेवी वर्मा और कहीं प्रसाद के रूपांकन का आभास दिलाती है।" [9]

सन् 1990 में श्री 'तरुण' के 60 वर्षों के सम्पूर्ण काव्य का 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' नामक संकलन ग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसका विमोचन गत वर्ष भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ0 शंकरदयाल शर्मा के हाथो से हुआ।

सन् 1991 में श्री प्रकाश मनु के सम्पादन मे उनके सम्पूर्ण काव्य मे से कुछ चुनी हुई आधुनिक चेतनामयी प्रतिनिधि रचनाएँ 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' शीर्षक से प्रकाशित हुईं। इसी साल 'चल पडे हम तो' शीर्षक छोटी पुस्तिका 'युवकों के लिए ज्योति–गीत' के रूप मे प्रकाशित हुई तथा एक मुक्तक संग्रह 'तारे, ओसकण और चिनगारियॉं' भी प्रकाशित हुआ।

जून 1995 मे 'तरुण' की 'मेरी ऑखो की खिडकी से' नामक प्रस्तुत पुस्तक प्रकाश में आई जिसमें गत् 50–55 वर्षों की अवधि मे समय–समय पर लिखे–जाते रहे 'तरुण' के लगभग 30 संस्मरणों का संग्रह है, जिसमें साहित्यिक युग–निर्माता, व्यक्तित्वो, भॉति–भॉति के जीवन चरित्रो, स्थानों–परिवेशों, स्थितियो प्रसंगों का तल्लीन अनुस्मरण और अन्तरंग वैयक्तिक भाव से वर्णन किया गया है। सन् 1995 में 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' नामक काव्य–सग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें 'तरुण' के अन्तर्बाह्य जीवन–यथार्थ की कविताओं का सकलन हैं।

अग्रेजी, कन्नड तथा गुजराती में उनकी कविताओ के अनुवाद प्रकाशित हो चुके है। राजस्थानी भाषा मे उनकी 50 उत्तमोत्तम कविताओं का अनुवाद–ग्रन्थ 'धरती घणी रूपाली' शीर्षक में से डॉ0 शक्तिदान कविया द्वारा जोधपुर से प्रकाशित हुआ।

'तरुण' देश की अनेक साहित्यिक संस्थाओ व शैक्षिक समितियो से सक्रिय रूप में सम्बद्ध रहें अनवरत साधना के वल पर उनका हिन्दी साहित्य–जगत मे सम्मान है। मानव मूल्यो की संवेदनहीनता व सांस्कृतिक विघटन के युग में अनेक विद्रूपताओं व विषमताओं का सामना करते हुए, मानव मूल्यों के उपासक और निश्चल–हृदय वाले भावुक 'तरुण' 2 फरवरी 1998 को अपनी तरुणाई को लेकर इस संसार को त्याग उस अलौकिक सत्ता की तरफ कूच कर गये, जहॉं एक न एक दिन सभी को जाना है।

'तरुण' साहित्य पर भारत के अनेक विश्वविद्यालयों मे एम0 फिल0, पी0 एच0 डी0 व डी0 लिट्0 आदि स्तरो पर शोध कार्य सम्पन्न हो चुका है तथा हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'मेरी ऑखो की खिडकी से, पृष्ठ 153
2. डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल तरुण प्रथम किरण के निवेदन से
3 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'आशीर्वाद' से
4 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' . 'हिमाचला' के 'आभास' से
5 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'आधुनिक हिन्दी–कविता मे प्रेम और सौन्दर्य', पृष्ठ 200–201
6 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'ऑंधी और चॉंदनी' की 'अपनी बात' से
7 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की 'भूमिका' से .
8 डॉ0 राजपति 'डॉ0 'तरुण' का गद्य साहित्य', पृष्ठ 7
9 डॉ0 राजपति 'डॉ0 'तरुण' का गद्य साहित्य', पृष्ठ 7